E-ISSN: 2664-603X
P-ISSN: 2664-6021
IJPSG 2022; 5(2): 124-126
www.journalofpoliticalscience.com
Received: 07-07-2023
Accepted: 12-08-2023

राजीव कुमार महतो
शोद्यार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, डॉ0 श्यामा प्रसाद मुखर्जी विश्वविद्यालय, राँची, झारखण्ड, भारत

Corresponding Author:
राजीव कुमार महतो
शोद्यार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, डॉ0 श्यामा प्रसाद मुखर्जी विश्वविद्यालय, राँची, झारखण्ड, भारत

झारखण्ड में जनजातीय विद्रोह का इतिहास

राजीव कुमार महतो

DOI: https://doi.org/10.33545/26646021.2023.v5.i2b.267

सारांश
झारखण्ड जंगलो, पहाड़ो, नदियों से आच्छादित भूमि है। यहाँ कि जनजातीय संस्कृति और भाषा भारतीय समाज की अमूल्य निधि है। झारखण्ड संघर्ष की धरती रही है। यहाँ कि जनजातियों ने अंग्रेजी सरकार, जमींदार, व्यापारियों और महाजनों के द्वारा किए जाने वाले दमन, शोषण, क्रूरता, पाश्विक अत्याचार और औपनिवेशिक घुसपैठ के प्रतिक्रिया स्वरूप समय–समय पर विद्रोह और आंदोलन करते रहे हैं। झारखण्ड के जनजातियों का जीवन जल, जंगल, जमीन से गहरा रूप से जुड़ा हुआ है साथ ही ये अपने भाषा, संस्कृति, पहचान और अस्मिता को लेकर सजग और जागरूक रहे हैं। इनके हितों और पहचान पर जब भी बाहरी हस्तक्षेप हुए हैं, तब–तब उसके खिलाफ में विद्रोह का संखनाद् हुआ है। प्रस्तुत शोध पत्र में झारखण्ड में जनजातीय विद्रोह के कारण और परिणाम पर प्रकाश डाला गया है। साथ ही शोध पत्र को सटिक बनाने के लिए द्वितीयक आँकड़ो का सहयाता लिया गया है।

कूटशब्द : झारखण्ड, जनजातीय विद्राह, जल, जंगल, जमीन

प्रस्तावना

झारखण्ड में अंग्रेजों का प्रवेश और विद्रोह

झारखण्ड में अंग्रेजों का प्रवेश सर्वप्रथम सिंहभूम की ओर से हुआ। 1760 ई. में ही ईस्ट इंडिया कम्पनी का मिदनापुर पर कब्जा हो चुका था। उसी समय से अंग्रेज सिंहभूम सहित अन्य सीमावर्ती क्षेत्रों में अपनी शक्ति तथा प्रभाव के विस्तार की बात सोचने लगे। उस समय सिंहभूम के प्रमुख राज्य थे ढाल राजाओं का ढालभूम, सिंह राजाओं का पोरहाट और हो लोगों का कोल्हान। मार्च 1766 ई0 में कम्पनी–सरकार ने निश्चय किया कि यदि सिंहभूम के राजागण कम्पनी की अधीनता स्वीकार न करें और नियमित रूप से सालाना कर की अदायगी न करें तो उनके विरूद्ध बल–प्रयोग किया जाये। जनवरी 1767 ई0 में फर्ग्यूसन को सिंहभूम पर आक्रमण करने का काम सौंपा गया।[1] फर्ग्यूसन ने आस–पास के कुछ राजाओं को युद्ध में पराजित किया तो कुछ ने डर कर आत्मसमर्पण कर दिया। इस तरह से झारखण्ड में अंग्रेजी शासन का शुरूआत हो गया।

कम्पनी शासन के आरंभ से ही झारखण्ड में असंतोष के स्पष्ट लक्षण दिखाई पड़ने लगे थे। असंतोष का एक वैज्ञानिक कारण भी था। प्राचीन काल से ही जनजातियों का बाह्य संस्कृतियों से कभी विरोधात्मक तो कभी सहयोगात्मक सम्पर्क रहा था। उत्तरी भारत से आर्यों द्वारा निष्कासित होने के बाद दीर्घकाल तक दोनों के बीच स्नेह और घृणा का संबंध रहा था। धीरे–धीरे सामंजस्य स्थापित हो गया था। किन्तु अंग्रेजों के आगमण से उनका संपर्क एक आक्रमक संस्कृति से हुआ। फलस्वरूप उनकी पहचान, संस्कृति तथा स्वतंत्रता के लिए एक नया खतरा उत्पन्न हो गया था। जिसकी उनमें सहज, स्वाभाविक, विरोधात्मक प्रतिक्रिया हुई। औपनिवेशिक व्यवस्था जनजातियों के लिए नई त्रासदी सिद्ध हुई। अनुपातिक एकात्मकता, भूमि–स्वामित्व और सामाजिक संरचना की तुलनात्मक अक्षुण्णता के कारण किसानों सहित किसी भी अन्य वर्ग की तुलना में उनके अधिक व्यापक और हिंसक विद्रोह हुए। इन विद्रोहों को साधारणतः आकस्मिक घटनाओं की संज्ञा दी गयी है। वस्तुतः ये विद्रोह न होकर आन्दोलन थे जिनका जनजातीय सामाजिक संरचना से सीधा संबंध था।[2]

मार्च 1767 ई0 को अंग्रेजी सेना ने घाटशिला पर आक्रमण कर दिया और राजा बैंकुंठ धवलदेव को गिरफ्तार कर मिनदनापुर जेल भेज दिया। फिर उसके भतीजे जगन्नाथ धवलदेव को सालाना 5000 रूपए कर देने की शर्त पर उसकी जगह राजा बनाया गया। जगन्नाथ धवलदेव ने स्थानीय लोगों को विश्वास में लेते हुए संगठित होकर अंग्रेजी शासन से स्वतंत्रता हासिल करने के लिए विद्रोह कर दिया। इसे 'ढाल विद्रोह' के नाम से भी जाना जाता है। ब्रिटिश कंपनी के एक संदेश के जवाब में जगन्नाथ ढाल ने कहा कि वह राजा बना रहना चाहता है और जब तक वह है, इसे क्षेत्र को कभी भी बंदूक या तलवार के बल पर टूटने–बिखरने नहीं देगा।

अंततः कंपनी ने बाध्य होकर जगन्नाथ ढाल को राजा माना। बाद में 1800 ई0 को धालभूम को स्थायी बंदोबस्ती मिली। उस समय यह क्षेत्र मिदनापुर का हिस्सा था, किन्तु सन् 1833 ई0 में यह मानभूम और फिर सन् 1846 ई0 में सिंहभूम में शामिल कर लिया गया।[3]

सन् 1832 ई0 में जंगल–महाल जिले के बराहभूम क्षेत्र में गंगानारायण सिंह के नेतृत्व में 'भूमिज विद्रोह' शुरू हुआ था। भूमिज विद्रोह विवेकशून्य, आधारहीन नहीं बल्कि समूचे आदिवासी समाज पर शोषण, दमन, जुल्म का उससे सीधा संबंध था। उन दिनों आदिवासी समाज की शिकायत थी कि बराहभूम राजा के पुलिस अधिकारी प्रजाओं के घर से मुरगी, बकरा, गाय, बैल उठा लेते थे तथा राजस्व अधिकारी जबरन मालगुजारी वसूली करते थे।[4]

इस तरह जबरन वसूली, संपत्ति से वंचित किया जाना और अपमान एवं उत्पीड़न की पृष्ठभूमि में भूमिजों के लिए विद्रोह छोड़कर कोई अन्य रास्ता नहीं रह गया था। गंगानारायण ने भूमिजों को एक अभूतपूर्व नेतृत्व प्रदान किया। अंग्रेजों ने भूमिज विद्रोह को कुचल दिया लेकिन विद्रोह ने यह सिद्ध कर दिया की जंगल महाल में प्रशासनिक परिवर्तन की आवश्यकता है। अतः 1833 ई0 के रेगुलेशन के द्वारा जंगल महाल जिला को समाप्त करने की घोषणा की गई। यहां दीवानी अदालत भी बंद कर दिया गया। मिदनापुर से अगल कर धालभूम और आस–पास के क्षेत्रों को मिलाकर मानभूम जिला बनाया गया तथा इसका मुख्यालय मान बाजार का बनाया गया। कंपनी की सरकार ने आगे चलकर 1833 ई को मानूभूम को मुख्यालय पुरूलिया स्थानांतरित कर दिया।[5]

भूमि–व्यवस्था के विखराब और सांस्कृतिक परिवर्तन की दोहरी चुनौतियों की प्रतिक्रिया स्वरूप 1789 ई0 से 1831 –32 ई0 के बीच मुण्डाओं के अनेक आंदोलन हुए जो भूमि–समस्या का समाधान और पुराने मूल्यों की पुनः स्थापना करना चाहते थे। पंचपरगना क्षेत्र में अपनी भौगोलिक स्थिति और वहाँ पूरब और दक्षिण के बाहरी क्षेत्रों से बड़ी संख्या में पहुँचने वाले किसानों के कारण सबसे पहले मुण्डारी खूँटकट्टी व्यवस्था का विघटना हुआ। जिस कारण मुण्डाओं को भागकर दक्षिणी खूँटी और पूर्वी तमाड़ की पहाड़ियों के बीच शरण लेना पड़ा। जिससे मुण्डाओं में भयानक असंतोष की आग सुलगी जो कोल विद्रोह के रूप में सामने आया।[6] कोल विद्रोह का मूल कारण अपनी खूटकट्टी भूमि से आदिवासी किसानों का स्वामित्व खत्म होते जाना था। नई राजस्व एवं प्रशासनिक व्यवस्था के तहत सत्ता मानकी, मुण्डा के हाथों से निकलकर नए जमींदारो के हाथों में चली गई थी। मालगुजारी वसूली के लिए नित्य नए बहिरागत उनके क्षेत्र में बसाए जा रहे थे। इन सब के अलावा महिलाओं पर भी अत्याचार बढ़ते जा रहे थे। ईचागुटू परगना के मानकी सिंगराय के बारह गांवों को सिखों ने छीन लिया साथ ही उनकी दो बहनों को भी ले गए। उसी प्रकार बड़गांव के सुर्गा मुण्डा की जमीन की बंदोबस्ती जफर अली को कर दी गई जिसने सुर्गा मुण्डा की पत्नी को भी उठा लिया। ऐसी घटनाएँ क्रांति के लिए तात्कालिक कारण बनी।[7]

मानकी सिंगराय एवं सुर्गा मुण्डा ने सोनाहातु, तमाड़ और बंदगांव अंचल के सभी मानकी–मुण्डाओं की सभा 11 दिसंबर 1831 ई0 के दिन तमाड़ के लंका नामक स्थान पर बुलाई। इस सभा में सभी दिकुओं (बहिरागतों) और उनके संरक्षकों को नेस्तनाबूद कर देने का प्रस्ताव लिया गया। सरकारी अधिकारियों से इनकी अनेक मुठभेडें हुई और अन्त में विद्रोहियों के नेता बिंदराय मानकी, सिंगराय मानकी के भाई और सुरगा मानकी ने 19 मार्च 1832 ई0 को आत्म–समर्पण कर दिया। कोल विद्रोह के फलस्वरूप सरकार ने उस क्षेत्र की प्रशासन और दीवानी तथा फौजदारी न्याय–व्यवस्था में सुविधा लाने के लिए उपयुक्त कदम उठाए। दक्षिण–पश्चिम सीमा एजेंसी (साउथ वेस्ट फ्रंटियर एजेन्सी) की स्थापना हुई और गवर्नर–जनरल के एजेन्ट के रूप में कैप्टन टी0 विलकिंसन नियुक्त किए गए।[8]

1857 ई0 के सिपाही विद्रोह के पहले झारखण्ड में अंग्रेजी शासन के खिलाफ कई विद्रोह हुए जिनमें संथाल विद्रोह (1855–56) भी एक महत्वपूर्ण विद्रोह था। संथाल विद्रोह या 'संथाल हुल' 'दामिन–ई–कोह' अंग्रेज सरकार एवं उसके कर्मचारियों के विरूद्ध स्वतंत्रता का आंदोलन था। यह आंदोलन लोकतंत्रीय आधार पर एक जन आंदोलन था, जिसमें संथालों के साथ समाज के सभी वर्गों ने भाग लिया था।[9] साम्यवादी लेखक कार्ल मार्क्स ने अपनी भारत संबंधी टिप्पणियों में 1855 ई0 के संथाल विद्रोह की चर्चा करते हुए लिखा है कि सत्ता–शासन के लिए होने वाले युद्धों से इतर यह पहला संगठित जनयुद्ध था, जिसमें सिपाहियों के बदले आम लोगों ने हिस्सा लिया।[10]

अंग्रेजी सरकार की अपेक्षापूर्ण नीति, महाजनों की स्वेच्छाचारिता, भ्रष्ट सरकारी कर्मचारियों एवं सिपाहियों के अभद्र व्यवहार से सभी लोगों में असंतोष एवं घृणा की भावना बढ़ती गई। इस क्षेत्र में पहली बार रेल लाइन बिछाने का काम शुरू हुआ। जिसमें स्थानीय ठेकेदार, यूरोपियन इंजीनियर, महाजन एवं अन्य पदाधिकारी मजदूरों का शोषण कर रहे थे। किन्तु सबसे बड़ा अपराध तो संथाल युवतियों के साथ होने वाला अत्याचार था। इन घटनाओं से भी सभी समुदाय के लोग क्रोधित हो उठे।[11] 30 जून 1855 ई0 को भोगनाडीह में करीब 30,000 लोग उपस्थित हुए और ब्रिटिश शासन के खिलाफ विद्रोह की शुरूआत की। इस विद्रोह के फलस्वरूप संथाल संकेन्द्रित क्षेत्र को भागलपुर तथा बीरभूम जिले से हटाकर 1855 ई0 में संथाल परगना के नाम से एक नन–रंगुलेशन जिला बनाया गया। यह क्षेत्र पहले भागलपुर कमिश्नर के अधीन था। इस नवनिर्मित जिला का मुख्यालय दुमका को बनया गया। 1856 ई0 में यहाँ पुलिस विधान की व्यवस्था की गई, जिसके अंतर्गत गाँव के परगनैत, माँझी आदि को अधिकार दिया गया। इसे 'युल रूल' के नाम से भी जाना जाता है फिर बाद में 30 नवम्बर 1856 ई0 को विधिवत् संथाल परगना जिले की स्थापना की गयी और इस जिले का प्रथम जिलाधीश एस0ली ईडेन बनाये गये।[12]

भारत की जनजातियों ने अपनी पैतृक भूमि, सामाजिक एवं सांस्कृतिक परम्पराएँ तथा परंपरागत शासन व्यवस्था पर होने वाले हस्तक्षेप के प्रतिक्रिया स्वरूप अनेक संगठित विरोध और आंदोलन किए हैं। उनमें बिरसा मुण्डा का आंदोलन महत्वपूर्ण स्थान रखता है। बिरसा मुण्डा का आंदोलन सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक आयाम से भरा एक पूर्ण आंदोलन था। जिसने धार्मिक जातीय और राजनीतिक आंदोलनों की पूरी श्रृंखला को प्रभावित किया। बिरसा मुण्डा का प्रारंभिक उभार एक सामाजिक तथा धार्मिक नेता के रूप में हुई। बिरसा के आन्दोलन का पहला चरण पादरियों के विरूद्ध था। दूसरे चरण का आंदोलन जो जनवरी 1900 ई0 से प्रारम्भ हुआ, गोरे साहबों के विरूद्ध था, उकने घर, दफ्तर और थानों के विरूद्ध था।[13] बिरसा मुण्डा के आंदोलन में भूमि–संबंधी एवं धार्मिक प्रश्न एक–दूसरे के साथ संश्लिष्ट थे। 9 जून 1900 ई0 में बिरसा मुण्डा के देहांत के बाद यह आंदोलन समाप्त हो गया। लेकिन अंग्रेजी प्रशासन को सोचने पर मजबूर कर दिया। अंग्रेज सरकार ने जनभावना को समझते हुए 1903 ई0 में काश्तकारी संशोधन अधिनियम के द्वारा मुण्डा खूँटकट्टी व्यवस्था को कानूनी मान्यता प्रदान की। वही अधिनियम बाद में छोटा नागपुर काश्तकारी अधिनियम 1908 (ब्छज्) के नाम से जाना जाने लगा। इसके अलावा आदिवासियों और प्रशासन को निकट लाने के उद्देश्य से 1905 ई में खूँटी तथा 1908 ई0 में गुमला अनुमण्डल बनाया गया।

निष्कर्ष

प्रस्तुत शोध पत्र से यह निष्कर्ष सामने आता है कि अंग्रेजी प्रशासन, महाजन और जमींदार के द्वारा झारखण्ड के जनजातियों

के जल, जंगल, जमीन, परंपरागत शासन, संस्कृति और अस्मिता के साथ–साथ महिलाओं पर भी शोषण, अत्याचार और जुल्म किए गए थे। इसके प्रतिक्रिया के रूप में जनजातियों ने अनेक विद्रोह और आंदोलन किए। जिस कारण आंग्रेज सरकार को बहुत से प्रशासनिक परिवर्तन और निर्णय लेना पड़ा। इस शोध से यह भी स्पष्ट होता है कि कोई भी प्रशासनिक औरा राजनीतिक निर्णय के पीछे सामाजिक आकांक्षाएँ, घटनाएँ, परिवर्तन और हलचल जिम्मेवार होते हैं।

संदर्भ

1. डॉ0 बी0 वीरोत्तम, 2020 (अष्टम् संस्करण) झारखण्ड : इतिहास एवं संस्कृति, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, पृ. सं. 99
2. वही, पृ. संख्या – 133
3. शैलेन्द्र महतो, 2021, झारखण्ड में विद्रोह का इतिहास (1767–1914), प्रभात प्रकाशन, नइ दिल्ली, पृ. सं. 19
4. वही, पृ. सं. 72
5. डॉ0 सिम्मी जावेद, 2021, झारखण्ड में सामाजिक आंदोलन, प्रिय साहित्य सदन, दिल्ली, पृ. सं. 74
6. कुमार, सुरेश सिंह, 2019, बिरसा मुण्डा और उनका आंदोलन (1872–1901), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. सं. 49
7. रणेन्द्र, सुधीर पाल, 2008, झारखण्ड एन्साइक्लोपीडिया (खण्ड–1), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. सं. 49
8. कुमार, सुरेश सिंह, पूर्वोक्त, पृ. सं. 45
9. डॉ. आभा खलखो, 2015, ब्रिटिशकालीन झारखण्ड के कुछ ऐतिहासिक अध्याय, जेवियर पब्लिकेशन्स, राँची, पृ. सं. 76
10. एच. वासुदेवन और आर. के. पाल, 2017, आदिवासी स्वर–1 (संघर्षों के संधिपत्र), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.सं. 30
11. वही, पृ. सं. 23
12. डॉ0 उमेश कुमार वर्मा, 2009, झारखण्ड का जनजातीय समाज, सुबोध ग्रन्थमाला, राँची, पृ. सं. 293
13. दीवाकर मिंज, 2019, शहीदों का झारखण्ड, कल्पाज पब्लिकेशन, दिल्ली, पृ. सं. 170